कैसे साथ-साथ चल पाए पढ़ना-लिखना और सुनना-बोलना

महेश झरबड़े

यह लेख मुख्यतः लिखने पर आधारित है। लेखक अपने कक्षा अवलोकनों के आधार पर कहते हैं कि कक्षा में बच्चों के साथ की जाने वाली लिखने की गतिविधियाँ आमतौर पर यांत्रिक और बनावटी होती हैं। कक्षा में उन्हें लिखी या छपी हुई सामग्री को देखकर लिखने या नक़ल का अभ्यास कराया जाता है। यही वजह है कि वे ख़ुद के द्वारा लिखी हुई सामग्री को भी पढ़ नहीं पाते हैं। लेखक ने, लिखना क्या है और लिखने-पढ़ने के कौशल को विकसित करने के लिए बच्चों के साथ कैसे काम किया जाए कि बच्चे समझकर और आत्मविश्वास के साथ लिखना-पढ़ना सीख सकें, इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। -सं.

सुनना-बोलना और पढ़ना-लिखना ऐसी अवधारणाएँ हैं, जो शिक्षा के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण है। सुनने-बोलने वाली अवधारणा के हर पहलू को सीखने, समझने से जोड़कर अब ये कहा जाता है कि सुनना-बोलना और पढ़ना-लिखना एक दूसरे से जुड़े हैं। जब हम बोलते हैं तो सुन भी रहे होते हैं; और जब लिख रहे होते हैं तो पढ़ भी रहे होते हैं। जितने ज़्यादा सुनने और बोलने के अभ्यास होंगे, आगे के वर्षों में पढ़ने-लिखने में ये प्रक्रिया उतनी ही मददगार होगी। यह भी कि न सिर्फ़ पढ़ाई, बल्कि पूरी ज़िन्दगी में हम सब सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने के सफ़र से गुज़र रहे होते हैं। ज़िन्दगी के कई कामों में, हर परिस्थिति में, मैं इन अवधारणाओं को देख पाता हूँ। इसलिए इन अवधारणाओं को किताब तक सीमित कर देना मेरे लिए बेमानी है। अभी स्कूल को ध्यान में रखकर कहूँ तो यदि स्कूल में बच्चे लिख ज़्यादा रहे हैं और लिखा हुआ कम पढ़ रहे हैं, तो इस अवधारणा की पूर्ति में कुछ छूट रहा है।

हाल के महीनों में, मैंने मध्यप्रदेश के खरगोन ज़िले में स्कूलों का भ्रमण किया। इस दौरान मैंने समझा कि प्राथमिक कक्षाओं में 'जब हम लिख रहे होते हैं तो पढ़ (बोल) भी रहे होते हैं' वाली बात पूरी तरह से फ़िट नहीं होती है। स्कूल में बच्चे, ख़ासतौर पर पहली, दूसरी, तीसरी और सम्भवतः अगली कक्षा के बच्चे भी लिखते तो हैं पर लिखा हुआ पढ़ नहीं पाते। हम सब जानते हैं कि बच्चे लिखते हैं। वे नक़ल लिखते हैं, बोर्ड पर लिखा उतारते हैं, किताब में लिखा हुआ कॉपी में लिखते हैं। लेकिन जब लिखा हुआ पढ़ने की बात होती है तो बात कहीं रुक-सी जाती है। यहाँ यह सवाल मन में उठना भी लाज़िमी है कि दीवार पर लिखा हुआ देखकर कॉपी में उतार लेना, नक़ल लिखना, किताब से देखकर लिखना, क्या वास्तव में लिखना है? क्या ये सब लिखते हुए बच्चे कुछ समझ भी रहे होते हैं? यदि नहीं, तो आख़िर लिखना है क्या?

लिखना क्या है?

यह शिक्षा के क्षेत्र का एक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण सवाल है कि आख़िर लिखना किसे कहा जाए? स्कूल में बच्चे बोर्ड से देखकर जो उतारते हैं, या किताब से देखते हुए कॉपी में लिखकर लाते हैं और शिक्षक को दिखाकर वैरी गुड या स्टार पाते हैं, क्या उसे लिखना कहा

जा सकता है? ऐसे वर्ण, शब्द या वाक्य, जिन्हें वे समझ नहीं सकते, बोल नहीं सकते (बार-बार लिखते-लिखते बोलने लगते हैं, जैसे– पतंग का 'प'), जिनका उनकी ज़िन्दगी या परिवेश से जुड़ाव नहीं है, जिनपर काम करते हुए वे आनन्द महसूस नहीं करते, पर वे उन वाक्यों या शब्दों को लिखते रहते हैं क्योंकि स्कूल में उन्हें लिखना सीखना है। कृष्ण कुमार अपनी किताब *बच्चे की भाषा और अध्यापक* में इस तरह के लेखन को यांत्रिक लेखन कहते हैं। इसमें बच्चे सिर्फ़ मशीन की तरह लिपि चिह्नों और शब्द प्रतीकों को लिखते रहते हैं। यांत्रिक लेखन की प्रक्रिया की यह संस्कृति धीरे-धीरे इतनी बढ़ जाती है कि समझना, महसूस करना, तर्क करना, बोलना और फिर समझकर लिखना कहीं दूर छूट जाता है। वे कहते हैं, "लिखना एक तरह की बातचीत ही है। लिखते वक़्त हम किसी से संवाद कर रहे होते हैं। हालाँकि प्रायः वह व्यक्ति (वस्तु या स्थान) हमारे सामने नहीं होता। यह अध्यापक पर निर्भर है कि बच्चे लिखने को सम्बोधन या किसी से कुछ कहने

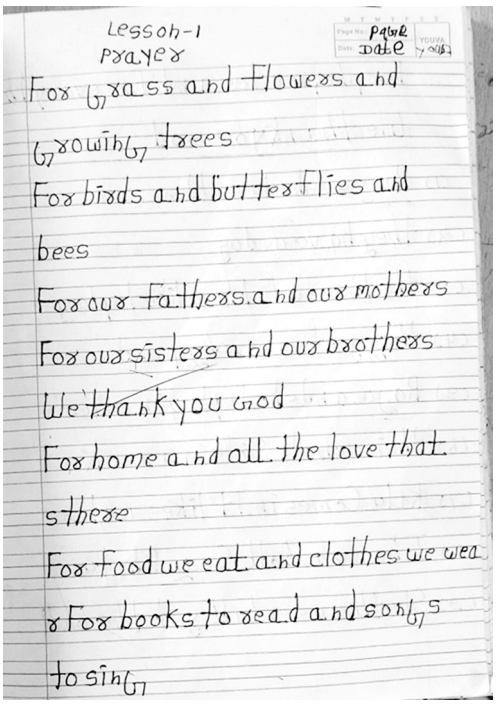
Lesson-1
Prayer
Page
Date
For grass and Flowers and
growing trees
For birds and butterflies and
bees
For our fathers and our mothers
For our sisters and our brothers
We thank you God
For home and all the love that
is there
For food we eat and clothes we wea
r For books to read and songs
to sing

की तरह ले पाते हैं या नहीं।"[1] वे आगे कहते हैं, "बच्चों को लिखना सिखाने की शुरुआत करने से पूर्व ये पक्का कर लीजिए कि बच्चे अपनी ज़िन्दगी और उसके आसपास हो रही चीज़ों के बारे में आत्मविश्वास से बात करने लगे हों।"[2]

यदि कृष्ण कुमार की बात की तरफ़ ध्यान दिया जाए तो यह बहुत स्पष्ट है कि पढ़ने-लिखने की शुरुआत तब की जानी चाहिए, जब बच्चे आत्मविश्वास के साथ आसपास की चीज़ों के बारे में बात करने लगे हों। अर्थात, पढ़ने-लिखने से पूर्व सुनने-बोलने की अवधारणा पर पर्याप्त काम किया जा चुका हो। बच्चों के साथ काम करते हुए मेरा यह विश्वास बना है कि बच्चे किसी भी वस्तु या व्यक्ति के बारे में जो सोचते हैं, वो बोलना या बताना चाहते हैं। किसी अन्य की उसी वस्तु के बारे में क्या राय है, ये सुनना भी चाहते हैं। अपनी बात बोलकर और किसी अन्य की सुनकर वे तुलना करने और दोनों बातों को मिलाकर एक नई समझ बनाने की दिशा में आगे बढ़ते हैं। इसके पर्याप्त अवसर मिल पाएँगे तभी उनका आत्मविश्वास बढ़ पाएगा और वे ख़ुद-ब-ख़ुद लिखने के लिए लालायित होंगे। कृष्ण कुमार अपनी किताब में कहते हैं, "जब बच्चे किसी काम की माँग करें तो यह उस बात का पक्का संकेत है कि वे उस काम को करना चाहते हैं। जब आप लिखने के शिक्षण का निर्णय लें तो सबसे पहले बच्चों से पूछें कि वे आपसे क्या लिखवाना चाहेंगे।"[3]

बच्चों के शुरुआती सीखने को देखें तो हम पाते हैं कि सुनना, फिर बोलना, इसके बाद पढ़ना और फिर लिखना, एक क्रमबद्ध अवधारणा है। अगर स्कूल और समाज के नज़रिए से देखें तो सुनने और बोलने को न तो अध्यापन की तरह ही देखा जाता है, न ही कक्षा में इसकी स्वीकार्यता होती है। वहीं दूसरी तरफ़, पढ़ने और लिखने को शिक्षक, समाज और व्यवस्था में मान्यता प्राप्त है। इसलिए न चाहते हुए भी शिक्षा की शुरुआत सुनने-बोलने से न होकर लिखने और पढ़ने की दिशा में आगे बढ़ जाती है और समझ विहीन यांत्रिक लेखन की संस्कृति बनने लगती है।

लिखने की यांत्रिक संस्कृति को बढ़ावा देते कुछ अनुभव

1. कहानी की किताबों पर काम के दौरान एक कक्षा में जब मैंने बच्चों से कहा कि चलो, गोले में बैठ जाओ, एक कहानी सुनाते हैं। बच्चे गोले में बैठ गए। अधिकांश बच्चे कॉपी-पेन लेकर बैठे थे। बहुत स्वाभाविक-सा सवाल है कि बच्चे कॉपी-पेन लेकर क्यों बैठे होंगे, उनके मन में क्या था, क्या बच्चों ने स्कूल में ये सीख लिया था कि हर गतिविधि के बाद लिखना ही है और सुनना एवं बोलना कम?

ठीक से सुनने, अपने अनुभव या बात बोलने, परिस्थितियों को समझने के बाद पढ़ने और लिखने की दिशा में आगे बढ़ना है, ये बात बच्चे आसानी से समझ सकते हैं यदि उनसे बात की जाए।

2. एक स्कूल में मैंने एक बच्चे की कॉपी देखी। उसकी कॉपी में कुल 32 पेज लिखे हुए थे जिसमें Yesterday, Tomorrow से शुरू होकर और भी मुश्किल शब्द लिखे गए थे। मैंने (We) दिखाते हुए उससे पूछा, "ये क्या लिखा है?" उसने कहा, "पढ़ नहीं सकता।" मेरा भरोसा है कि यदि लिखने के पूर्व नए शब्दों पर बातचीत, दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले वाक्यों में इनका प्रयोग और फिर बाद में लिखने के अभ्यास होते तो सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने की अवधारणा साथ-साथ आगे बढ़ सकती थी।

3. एक अन्य स्कूल में कक्षा दूसरी के एक बच्चे की कॉपी में 'दक्षिण' लिखा था। मैंने पूछा, "किसने लिखवाया?" वह बोला, "मैंने ही लिखा, अपने-आप।" "कहाँ से?" सवाल के उत्तर में उसने दीवार में ऊपर लिखी दिशा की तरफ़ इशारा किया। मैंने कहा, "पढ़ो?" वह बोला, "लिखना आता है अभी।"

4. एक स्कूल में मैंने 'भालू ने खेली फ़ुटबॉल' कहानी सुनाई। कहानी सुनाने के बाद उसमें आए मुख्य शब्द, जैसे– किसान, शेर का बच्चा, फ़ुटबॉल, गोल-मटोल, जामुन का पेड़, सर्दी, आदि, बोलते और बच्चों से पूछते हुए बोर्ड पर लिख दिए। मैंने किसी भी बच्चे से नहीं कहा था कि बोर्ड पर लिखे शब्दों को कॉपी पर लिखना है। पर यह क्या? 23 में से 18 बच्चों ने कॉपी में शब्द लिख लिए थे और बाक़ी लिख रहे थे। उनमें से कुछ को शब्द पढ़ना आता था और कुछ को नहीं। पर सवाल था, जो नहीं आता, जिसे लिखने के लिए नहीं कहा गया, उसे लिखना क्यों? सम्भवतः स्कूल में आते-आते

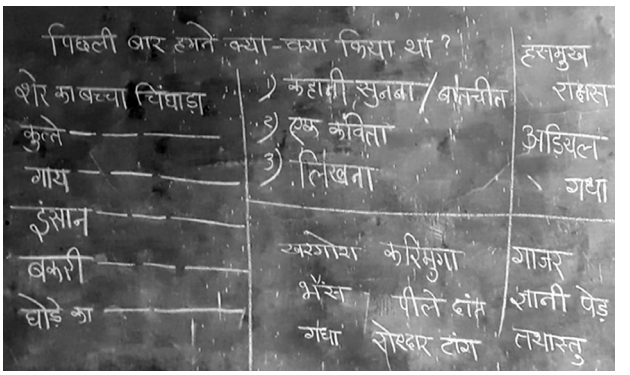

बच्चे सीख गए हैं कि बोर्ड पर जो लिखा गया है वो तो लिखना ही है। बच्चों में दो-तीन वर्षों में लिखने की आदत इतनी पक्की हो जाती है कि शिक्षक द्वारा बोर्ड पर लिखा हुआ वे लिख ही लेते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में पढ़ना (लिखा हुआ बोलना) और समझना कहीं गुम हो जाते हैं।

5. अगली बार जब फिर इसी स्कूल में मेरा जाना हुआ तो पुनरावृत्ति के उद्देश्य से मैंने स्कूल बोर्ड पर लिखा, "पिछली बार हमने क्या-क्या किया था?" मेरा उद्देश्य था कि बच्चे लिखा हुआ पढ़ें, उसे समझें और हम सब मिलकर उसपर चर्चा करें (पाठ्यपुस्तक में दी गई दक्षता, सुनना, बोलना और पढ़ना-लिखना, का विकास हो पाए)। ठीक उसी समय स्कूल के शिक्षक साथी आए और बिना कुछ सोचे, बिना बोर्ड देखे उन्होंने बच्चों से कहा, "सर ने लिखा है न! तुम भी लिखो।"

बच्चों को रोककर मैंने सर को बताया कि हम क्या करने वाले हैं।

6. एक और स्कूल में पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ हमने ध्वनि पहचान के लिए सबके नाम में सुनाई देने वाली ध्वनि पर काम किया। आने से पहले बच्चों से मैंने, "मुझे याद रखोगे न!", कहकर, बोलते हुए बोर्ड पर अपना नाम लिख दिया। "हम कॉपी में आपका नाम लिख लेते हैं", कहते हुए बच्चों ने अपनी कॉपी में मेरा नाम लिख लिया। मैंने पूछा, "तुम्हारे घर कोई मेहमान आता है तो उसे याद रखने के लिए अपनी कॉपी में नाम लिखकर रखते हो क्या?" कक्षा में शान्ति थी। बच्चों ने कहा, "कॉपी में नहीं लिखते हैं" (रियल लाइफ़ में याद रखने के दूसरे तरीक़े हैं)। बच्चे मुझे वैसे भी याद रखते, पर सच ये है कि उनमें से ज़्यादातर स्कूल में लिखने की आदत के कारण नाम लिख रहे थे, नाम याद रखने के लिए नहीं।

यदि मैं बच्चों की कॉपियों के आधार पर कहूँ तो प्राथमिक कक्षाओं की शुरुआत में मुझे एक पैटर्न दिखाई देता है। जब बच्ची स्कूल आती है तो उसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाता है। एक-एक अक्षर कई बार लिखवाया जाता है। इसे वह कई बार लिखती है। इसके बाद बारहखड़ी की बारी आती है और फिर सरल शब्द (बिना मात्रा वाले) लाइन में खड़े होते हैं। फिर अलग-अलग अक्षरों पर मात्रा लगाकर शब्द बनाना, उन्हें लिखना और पढ़ना सिखाया जाता है। ख़ास बात ये भी है कि जब तक बच्चा वर्णमाला नहीं सीख जाता, उससे बारहखड़ी लिखवाने की शुरुआत नहीं होती। यही क्रम बाक़ी अवधारणाओं में भी होता है। ये सीखते हुए बच्चों का आधा से एक साल गुज़र जाता है। बच्चे लिखना तो सीख जाते हैं, पर लिखकर पढ़ते हुए समझना कहीं छूट-सा जाता है और वे पढ़ने की बजाय कृत्रिम लिखने की दिशा में आगे बढ़ जाते हैं। इन्हीं दिनों में, बच्चों में समझ विहीन लिखने की मशीनी संस्कृति धीरे-धीरे पनप रही होती है।

लिखने की आदत को लेकर धारणाएँ

यदि शिक्षक के नज़रिए से देखा जाए तो लिखने के कई फ़ायदे हैं। जैसे– लिखते हुए बच्चे शोर कम करते हैं, बार-बार लिखने से लिपि चिह्न की पहचान हो जाती है, हैंड कंट्रोल होता है, लेखन सुन्दर होता है, ये सब लेखन प्रक्रिया में आगे की कक्षाओं में मदद करता है, आदि। यह सही भी है, लेकिन मन में सवाल उठते हैं कि क्या समझ के साथ, मज़ेदारी से लिखना और पढ़ना साथ-साथ सिखाया जा सकता है? क्या ज़्यादा अवधि तक लिखते हुए आधे से एक साल निकाल देना उचित है? बच्चा ये लिखते हुए लिखने के अलावा भी कुछ सीखता है क्या? क्या उसका आत्मविश्वास बढ़ता है? बिना अर्थ समझे यांत्रिक तरीक़े से लिखते रहना, क्या उसे स्कूल से जोड़े रखने और नियमित स्कूल आने के लिए प्रोत्साहित करता है? ख़ुद को अभिव्यक्त करना, तर्क करना, सोचकर जवाब देना, सवाल पूछना जैसे भाषा शिक्षण के अनिवार्य कौशलों को कब स्थान मिलेगा? इस प्राथमिक कक्षाओं (अवस्था या उम्र) में सुनने, बोलने और पढ़ने के जो कौशल सिखाए जाने चाहिए थे, वे कौशल क्या उसे आगे की कक्षाओं में सिखाए जाएँगे? सम्भवतः नहीं।

मुझे याद है, गाँव में पहली कक्षा में हम 31 बच्चे थे और 5वीं में सिर्फ़ 7 पहुँच पाए थे। हो सकता है कि हमारे कई साथी पहली कक्षा में सुनकर और बोलकर जो सीखना चाहिए था, नहीं सीख पाए और लिखने में ही रह गए व आगे नहीं बढ़ पाए (हमारे कई साथियों की राइटिंग आज भी बहुत अच्छी है)।

सार्थक लेखन के कुछ प्रयोगात्मक उदाहरण

1. उन दिनों जब मैं एक स्कूल में पढ़ाया करता था तो अकसर छुट्टी के समय शुरुआती बच्चों (पहली, दूसरी) की कॉपी में उनसे पूछकर कोई एक या दो शब्द लिख देता था जिसे वे अगले दिन लिखकर लाते थे। इन शब्दों में वर्ण, मात्रा कभी बाधा नहीं बने। बच्चे जो शब्द बोलते

थे उनमें मम्मी, छोटा भइयू, कुत्ता, रोटी, बिल्ली मौसी, बकरी, पिल्लू जैसे अनेक शब्द आते थे। एक दिन दूसरी कक्षा की एक बच्ची ने कहा, "लिखो, 'मेरे घर कब आओगे'।" मैंने लिख दिया। अगले दिन सबके साथ उसने भी उँगली रखकर पढ़ते हुए सुनाया। मैंने मुस्कुराते हुए कहा, "बिलकुल सही", और अगली कॉपी देखने लगा। थोड़ी देर बाद वो मेरे सामने खड़ी होकर आँखें दिखाते हुए बोली, "मेरे घर कब आओगे?" उसका लिखा हुआ एक आग्रह भी था और उसने कुछ सोचकर ही मुझसे ये लिखवाया था। ये बात मुझे देर से समझ आई थी। पर इस वाक़िए ने कृष्ण कुमार की बात, "जब बच्चे किसी काम की माँग करें तो यह उस बात का पक्का संकेत है कि वे उस काम को करना चाहते हैं। जब आप लिखने के शिक्षण का निर्णय लें तो सबसे पहले बच्चों से पूछें कि वे आपसे क्या लिखवाना चाहेंगे", को एकदम सार्थक और जीवन्त कर दिया था। यह वाक़िया पढ़ने और लिखने के कई पहलुओं को समझने में सहायक है। इस दौरान मैंने ये भी महसूस किया कि इस लेखन में शब्द बच्चों के परिवेश के थे इसलिए इन शब्दों के साथ उनका एक अपनापन भी था। दूसरी बात, 'जो हम कहते हैं उसे लिखा भी जा सकता है', इस बात पर भी उनका भरोसा बना था।

2. मैं जब एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र में बच्चों को पढ़ाता था तब एक पहली कक्षा की बच्ची ने फ़ोन देखकर कहा था, "सर, मेरा फ़ोटो खींच दो न!" उस समय उसके पास कॉपी-पेन नहीं था। कक्षा के बाद जब वो घर जाने लगी तो मैंने एक पेज पर यही वाक्य लिखकर उसे दिया और कहा इसमें लिखा है, "सर, मेरा फ़ोटो खींच दो न!" वह ये पेज़ सँभालकर घर ले गई और अपनी बड़ी बहन से मेरे द्वारा लिखा वाक्य अपनी कॉपी में लिखवाया। सावी आज 12वीं पास कर चुकी है। वो कहती है, मैंने सबसे पहले यही वाक्य पढ़ना सीखा था।

3. खरगोन ज़िले के गोगवा ब्लॉक के एक स्कूल में कक्षा 5वीं के बच्चे 'हू तू तू' पाठ पढ़ रहे थे। इस पाठ में कबड्डी के कई नाम आए, जैसे– हू तू तू, हा डू डू, छू किट किट, आदि। पाठ ख़त्म होने के बाद मैंने यही नाम एक कार्डशीट पर लिखकर दीवार पर लगा दिए। साथ ही अलग-अलग राज्यों में कबड्डी के विभिन्न नामों पर चर्चा की। बाद में एक अन्य कक्षा की बालिका ने कहा, "मुझे ये नाम लिखना है।" हमने सलाह दी, "कॉपी में लिख लो।" उसने कहा, "मुझे याद भी रखना है, मैं कॉपी पर लिख लूँगी।" यह कहते हुए उसने अपनी सहेली से पेन लिया और अपनी हथेली में ये सब नाम लिखकर, पढ़कर (बोलकर) सुनाए।

एक सप्ताह बाद जब मेरा उस स्कूल में दोबारा जाना हुआ तो उसने चौथी-पाँचवीं कक्षा में जाकर कहा कि 'हा डू डू' वाले सर आए हैं। वो दीवार पर लिखा 'हा डू डू' पढ़ भी पा रही थी, और लिख भी। पर ये भी उतना ही सच है कि लिखने से पहले वह सुनने और बोलने के अवसरों से गुज़री थी। 'हा डू डू' उसके लिए अब किताब में लिखा शब्द न होकर बोलचाल का आम शब्द हो गया था। मेरा मानना है कि यही सही मायनों में सीखना है।

उपरोक्त उदाहरणों के आधार पर मैं यह बहुत पक्के से कह सकता हूँ कि बच्चों ने जो भी शब्द और वाक्य सीखे, उन सभी से बच्चों का बहुत नज़दीक से जुड़ाव था। वे उनके परिवेश से जुड़े शब्द थे और बच्चे उन्हें सीखना चाहते थे। इसमें मज़ा भी था और सीखने की ललक भी।

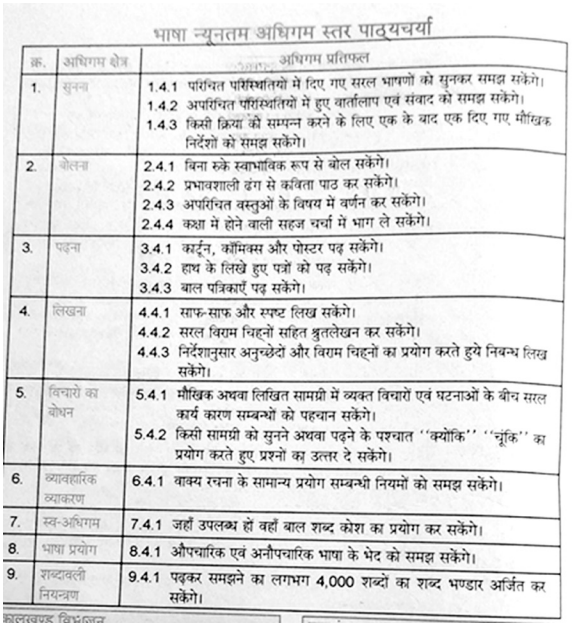

भाषा न्यूनतम अधिगम स्तर पाठ्यचर्या

क्र.	अधिगम क्षेत्र	अधिगम प्रतिफल
1.	सुनना	1.4.1 परिचित परिस्थितियों में दिए गए सरल भाषणों को सुनकर समझ सकेंगे। 1.4.2 अपरिचित परिस्थितियों में हुए वार्तालाप एवं संवाद को समझ सकेंगे। 1.4.3 किसी क्रिया को सम्पन्न करने के लिए एक के बाद एक दिए गए मौखिक निर्देशों को समझ सकेंगे।
2.	बोलना	2.4.1 बिना रुके स्वाभाविक रूप से बोल सकेंगे। 2.4.2 प्रभावशाली ढंग से कविता पाठ कर सकेंगे। 2.4.3 अपरिचित वस्तुओं के विषय में वर्णन कर सकेंगे। 2.4.4 कक्षा में होने वाली सहज चर्चा में भाग ले सकेंगे।
3.	पढ़ना	3.4.1 कार्टून, कॉमिक्स और पोस्टर पढ़ सकेंगे। 3.4.2 हाथ के लिखे हुए पत्रों को पढ़ सकेंगे। 3.4.3 बाल पत्रिकाएँ पढ़ सकेंगे।
4.	लिखना	4.4.1 साफ-साफ और स्पष्ट लिख सकेंगे। 4.4.2 सरल विराम चिह्नों सहित श्रुतलेखन कर सकेंगे। 4.4.3 निर्देशानुसार अनुच्छेदों और विराम चिह्नों का प्रयोग करते हुये निबन्ध लिख सकेंगे।
5.	विचारों का बोधन	5.4.1 मौखिक अथवा लिखित सामग्री में व्यक्त विचारों एवं घटनाओं के बीच सरल कार्य कारण सम्बन्धों को पहचान सकेंगे। 5.4.2 किसी सामग्री को सुनने अथवा पढ़ने के पश्चात ''क्योंकि'' ''चूंकि'' का प्रयोग करते हुए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।
6.	व्यावहारिक व्याकरण	6.4.1 वाक्य रचना के सामान्य प्रयोग सम्बन्धी नियमों को समझ सकेंगे।
7.	स्व-अधिगम	7.4.1 जहाँ उपलब्ध हो वहाँ बाल शब्द कोश का प्रयोग कर सकेंगे।
8.	भाषा प्रयोग	8.4.1 औपचारिक एवं अनौपचारिक भाषा के भेद को समझ सकेंगे।
9.	शब्दावली नियन्त्रण	9.4.1 पढ़कर समझने का लगभग 4,000 शब्दों का शब्द भण्डार अर्जित कर सकेंगे।

मैं अपने शिक्षक साथियों से चर्चा करता हूँ कि ‘मोबाइल’ और ‘करतब’ में से कौन-सा शब्द बच्चे ज़्यादा बोलते हैं। वह जो उनके परिवेश से जुड़ता है और आसानी से याद रखा जा सकता है? उत्तर हमेशा मोबाइल होता है। पर लिखने-पढ़ने की शुरुआत में मोबाइल और करतब में से पहले करतब आ जाता है। क्योंकि सुनना और बोलना (सुनने, बोलने से समझना और याद रखना विकसित होता है) अवधारणा पढ़ाई में न तो अपनी जगह बना पाई है न ही विश्वास। मेरा मानना है कि याद रखना भी पढ़ाई से जुड़ी एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जो सुनते-बोलते-देखते हुए स्वयमेव ही विकसित होती रहती है।

अवधारणा और किताब

मध्यप्रदेश में पहली और दूसरी कक्षा में एनसीईआरटी और तीसरी, चौथी व पाँचवीं कक्षा में एससीईआरटी का पाठ्यक्रम चलन में है। दोनों ही पाठ्यक्रम इस ओर इशारा करते हैं कि कक्षा में सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने के कौशल अनिवार्य हैं। सुनने-बोलने व पढ़ने-लिखने को हर स्तर पर तवज्जो दी गई है। साथ ही यह अपेक्षा भी की गई है कि इस सफ़र से गुज़रते हुए बच्चे नए शब्दों का प्रयोग व किताब में वर्णित नए शब्द वे आम बातचीत में प्रयोग करेंगे तभी ये शब्द उनके लेखन में भी जगह बना पाएँगे। शिक्षक व बच्चों से अपेक्षा है कि जहाँ चौथी कक्षा में उनके पास 4,000 शब्दों का भण्डार होगा, वहीं पाँचवीं में उनका 5,000 शब्दावली पर नियंत्रण होगा। बच्चे कक्षा के हिसाब से पाठ पढ़ने और लिखने में तो आगे बढ़ते जाते हैं, पर उस कक्षा में और क्या-क्या सुनना चाहिए, कौन-से नए शब्द सीखने चाहिए, किसी मुद्दे पर कैसे बोलना चाहिए, इस मामले में आगे नहीं बढ़ते हैं। शायद इसीलिए ‘गाय’ के बारे में लिखते समय चौथी का बच्चा भी यही लिखता है, ‘‘गाय के चार पैर होते हैं’’, और सातवीं वाला भी कहता है, ‘‘गाय के चार पैर होते हैं’’।

मेरा मानना है कि पढ़ने-लिखने के कौशल के साथ सुनने-बोलने के कौशल भी उसी गति से बढ़ते रहने की ज़रूरत है।

सन्दर्भ

1, 2 और 3, *बच्चे की भाषा और अध्यापक*, कृष्ण कुमार, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

महेश झरबड़े पिछले 15 सालों से बच्चों व युवाओं के साथ शिक्षा सम्बन्धी कामों से जुड़े रहे हैं। एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र और मुस्कान के जीवन शिक्षा पहल स्कूल में बच्चों व युवाओं के विभिन्न मुद्दों को शिक्षा के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। आदिवासी और वंचित तबक़ों के लिए किस तरह की शिक्षा हो, ये समझने का प्रयास जारी है। आपने सिनर्जी संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर इस मुद्दे को गहराई से समझने की कोशिश भी की है। बच्चों, युवाओं व ग्रामीण विकास के मुद्दों पर पढ़ने और लिखने में रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन मध्यप्रदेश के खरगोन ज़िले में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mjharbade@gmail.com